ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

भोजपुरी सिनेमा का समाजशास्त्र

प्रो. आलोक पाण्डेय

हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
dralokpandey@gmail.com

भोजपुरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक महत्त्वपूर्ण बोली है। देश – विदेश के लगभग 20 करोड़ भोजपुरिया लोगों की भाषा। भोजपुरी सिनेमा इसी बोली और भाषा का सिनेमा है। कुछ लोग 1948 की दिलीप कुमार, कामिनी कौशल अभिनीत, मोती बी ए के लोकप्रिय गीतों से सजी, मछुवारों के जीवन पर बनी बेहद सफल फिल्म नदिया के पार को पहली भोजपुरी फिल्म मानते हैं। इसमें गंगा यमुना और तीसरी कसम की तरह भोजपुरी का प्रभाव तो है, पर यह शुद्ध भोजपुरी फिल्म नहीं है।

पहली शुद्ध भोजपुरी फिल्म 'गंगा मैय्या तोहे पियरी चढ़इबे' है। जिसे 1963 में मूलतः भोजपुरी मातृभाषी गाजीपुर के प्रसिद्ध फ़िल्मकार और अभिनेता नासिर हुसैन ने प्रथम राष्ट्रपति और भोजपुरी मातृभाषी राजेंद्र प्रसाद जी के 1950 में प्रेमिल अनुरोध पर बनायी थी। जो एक बेहद सफल, प्रशंसित और सामाजिक समस्या पर केन्द्रित फिल्म थी। इसकी सफलता और प्रशंसा से प्रेरित होकर उस वक्त कई भोजपुरी फिल्में बनीं – लागी नहीं छूटे रामा, विदेशिया, हमार संसार, बलम परदेशिया आदि। 1977 में सुजित कुमार – पद्मा खन्ना अभिनीत पहली रंगीन भोजपुरी फिल्म दंगल थी, जो बहुत सफल रही। 1982 में सचिन और साधना सिंह की नदिया के पार – हिंदी - भोजपुरी मिश्रित बेहद सफल फिल्म थी, जिस पर कालांतर में हम आप के हैं कौन का निर्माण हुआ। इसके बाद एक लम्बा अंतराल रहा।

फिर 2003 में रवि किशन की 'सैयां हमार' और 2004 में मनोज तिवारी की 'ससुरा बड़ा पैसा वाला' रिलीज हुईं। दोनों बेहद सफल रहीं। और इनसे रवि किशन और मनोज तिवारी का सुपर स्टारडम भी शुरू हुआ। इनकी लोकप्रियता का अंदाज़ा इस बात से लगा सकते हैं कि आज रवि किशन गोरखपुर से सांसद हैं। तो निरहुआ ने अखिलेश यादव को आजम गढ़ से कड़ी टक्कर दी। और मनोज तिवारी दिल्ली में आज बी जे पी के मुख्य कर्त्ता धर्ता हैं। कल को अगर दिल्ली में बी जे पी सत्ता में आती है तो वे मुख्यमंत्री भी हो सकते हैं। ये है भोजपुरी सिनेमा की नयी आसमान छूती लोकप्रियता - गोरखपुर से लेकर दिल्ली तक फैली हुई। गोरखपुर जो भोजपुरी का एक केंद्र है, में यह शक्ति तो समझ में आती है पर दिल्ली में ? दिल्ली बिहार और पूर्वांचल के श्रमिक समाज से भरा हुआ है। यही लोग हैं जो भोजपुरी

फिल्में बिहार और यू पी में देखते हैं और दिल्ली में भी। पर इस देखने का मनोज तिवारी के दिल्ली बीजेपी का मुख्य नेता होने से क्या रिश्ता है ? इसी दिल्ली में 20 साल पहले बिहारी मजदूर को हिकारत से बीमारी कहा जाता था। उस बिहारी ने पहले अपने सिनेमा में अपना नायक पाया, फिर उसे सुपर स्टार बनाया। और इस कदर बनाया की हिंदी के बिग बॉस में क्रमशः रवि किशन, मनोज तिवारी और निरहुआ सभी गए। आज वही उपेक्षित अपमानित बिहारी दिल्ली में मनोज तिवारी के रूप में अपने सम्मान की स्थापना देखता है। 2003-04 से भोजपुरी सिनेमा में आये इस बड़े उछाल को किस तरह समझा जाये ? कुछ लोग मानते हैं कि बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल यूनाइटेड आदि के नेतृत्व में दलित और पिछड़ी जातियों में आई राजनीतिक शक्ति और सत्ता भी इसका एक कारण है। जिसे लोग भदेस और छोटा समझते रहे थे, उसने इस राजनैतिक शक्ति से एक नया आत्म विश्वास प्राप्त किया। और अपनी पहचान को भोजपुरी सिनेमा में सेलेब्रेट करने लगा। भदेस शिष्ट को किनारे कर अपनी जगह बना रहा था। सेलेब्रेट करने की यह आर्थिक शक्ति उसे भूमंडलीकरण के कारण अर्थ व्यस्था में आई गतिशीलता और सम्पन्नता से मिली। एक तरफ मनरेगा था तो दूसरी तरफ बड़े शहरों में रोजगार के छोटे ही सही पर अनेक अवसर। अपना गाँव छोड़कर हैदराबाद से मुंबई तक में काम कर रहे इन अस्थायी विस्थापित श्रमिकों ने भोजपुरी सिनेमा को आक्सीजन की तरह इस्तेमाल किया। वह जैसा भी था उनका अपना था। वो दुनिया जिसे वे पीछे छोड़ आये थे और जो उन्हें रोज याद आती थी, अब भोजपुरी सिनेमा के माध्यम से उससे एक हलकी ही सही मुलाकात हो जाती थी। और इनकी जेब में अब इतने पैसे तो हो ही गए थे कि रविवार को सिंगल स्क्रीन थिएटर में, जहाँ टिकेट अब भी सस्ता था, भोजपुरी फिल्म देख लेते।

रवि किशन, मनोज तिवारी, निरहुआ आदि के नेतृत्व में भोजपुरी फिल्मों का 2003 के बाद जो बेहद सफल दौर शुरू हुआ, वह जारी है। आज हर साल लगभग 100 फिल्में भोजपुरी में बनती हैं, जिनपर 100 करोड़ रु खर्च होते हैं और 125 करोड़ रु की कमाई होती है। जिस पर सिर्फ बिहार सरकार को 10 करोड़ रु टैक्स के रूप में मिलते हैं। पर सफलता के इस चमकते सफ़र में नासिर हुसैन की बनायी भोजपुरी फिल्मों की धरती से इनका नाता टूटता चला गया। और 70 की सस्ती मसाला हिंदी फिल्मों का भद्दा अनुकरण शुरू हुआ। नतीजतन 'पेप्सी पी के लागेलू सेक्सी', 'लैला माल बा छैला धमाल बा', 'लहंगा में बाढ़ आइल बा', 'मेहरारू चाहीं मिल्की वाइट' जैसी स्त्री की गरिमा को धूमिल करने वाली, उसे मात्र देह के रूप में प्रस्तुत वाली बाजारू फिल्मों का दौर सा चल पड़ा।

सफलता के इस आसमानी दौर में बालीवुड के बड़े सितारे भी झिलमिलाते रहे – अमिताभ बच्चन से लेकर मिथुन चक्रवर्ती तक। और वे खूब सफल भी हुए। इसी दौर में ऐसे अनेक फिल्म निर्माता और निर्देशक भी आते गए, जिनको न तो भोजपुरी संस्कृति की कोई समझ थी न भोजपुरी समाज की। इन्होने मुंबई को केंद्र बनाकर, वहीँ के तक्नीशियंस की मदद से थोड़ी सी शूटिग बिहार में और ज्यादा मुंबई और गुजरात में करते हुए अनेक सफल फिल्में बनायीं। इन्होने विदेशों में भी शूटिंग की। भोजपुरी फिल्मों के सास्कृतिक पतन के पीछे ये लोग भी हैं। अपना मूलधन निकालने और अधिकतम लाभ कमाने के एकमात्र उद्देश्य से भोजपुरी फिल्में बनाने वाले बाहरी और भीतरी दोनों ही लोगों ने फिल्म के प्रेम दृश्यों में मांसलता और संघर्षों में जबरदस्त हिंसा को बढाया, कामुक आइटम गानों और द्विअर्थी अश्लील संवादों की भरमार की। इन सबकी नज़र भोजपुरी समाज के निम्न/श्रमिक वर्ग पर थी, जिन्हें हिंदी सिनेमा उपेक्षा से फ्रंट बेन्चर्स कहता रहा है। इन्होने उन्ही फ्रंट बेन्चर्स को मुख्य दर्शक बना दिया। नतीजतन मध्य वर्ग, स्त्रियाँ और बच्चे भोजपुरी फिल्मों को ख़राब मानते हुए दूर ही रहे। इसका नुकसान भोजपूरी सिनेमा को दो रूपों में हुआ – एक, आर्थिक रूप में। क्योकि दर्शक कम हुए। दूसरा, सांस्कृतिक रूप में। क्योंकि अगर भोजपुरी भाषी शिक्षित मध्य वर्ग और परिवार इनको देखते तो इन पर एक नैतिक और सांस्कृतिक दबाव पड़ता और ये उस पतन के शिकार नहीं होते, जिसके होते गए।

इनके पतन का एक और भी पहलू है। ये सच है कि ये फिल्में सफल तो हो रही हैं पर इनका कोई कलात्मक विकास नहीं हो रहा है। न तो इनके पास ढंग की कहानियाँ हैं और न ही सिनेमाई क्राफ्ट की कुशलता। सच्ची ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति भी लुप्तप्राय ही हैं।

ऐसा नहीं है कि इस परिदृश्य को बदने के प्रयास नहीं हुए हैं। इसी दौर में नितिन चन्द्र ने 2011 में बेरोजगारी पर केन्द्रित देशवा जैसी फिल्म भी बनायी, जिसे 16 अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में और 50 वर्षों में पहली बार किसी भोजपूरी फिल्म के रूप में गोवा के अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव के इन्डियन पैनोरमा खंड में भी प्रदर्शित किया गया। पर इसे बिहार में दिखाने को कोई तैयार नहीं हुआ, क्योंकि ये वितरकों को हाई क्लास लगी जो फ्लाप हो जाती। और भी चिंताएं और प्रयास देखने में आये। भोजपुरी सिनेमा के एनसाक्लोपीडिया माने जाने वाले मनोज भावुक ने अपनी भोजपुरी सिनेमा का इतिहास पुस्तक में, चंपारण टाकीज के बैनर तले नितिन चन्द्रा ने अपनी डाक्यूमेंट्रीज ब्रिंग बैक बिहार, और बोया पेड़ बबूल का, में इस हालत पर अपनी चिंताएं जाहिर की हैं।

आज भोजपुरी सिनेमा के पास अपना अवार्ड शो है। अपनी ट्रेड मैगजीन भोजपुरी सिटी है। देश के अधिकांश हिस्सों और दुनिया के कई भागों में रहता इंडियन डायस्पोरा का भोजपुरी समझने वाला विशाल दर्शक समूह है। कुल मिलाकर लगभग 200 करोड़ की भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री के पास फिल्म निर्माण का एक ऐसा गणित भी है जो उसे आर्थिक असफलता से बचा भी लेता है। पर यदि नहीं है तो वह प्रतिस्था, जो अनेक क्षेत्रीय फिल्मों के पास है। ऐसा मानने वालों में भोजपुरी सिनेमा की ट्रेड मैगजीन के संपादक किशन खादरिया भी हैं। भोजपुरी सिनेमा के इस हाल के पीछे कुछ अन्य कारण भी हैं। जैसे महंगा स्टार सिस्टम। दर्शकों को अपनी और खींचने की प्रतिद्वंदिता में भोजपुरी फिल्मों का बजट कई बार बहुत अधिक हो जाता है। ऐसे में कई निर्माता – निर्देशक वितरकों से आर्थिक मदद लेते हैं। चूँकि यह मदद बहुत ही गाढे वक्त पर होती है, इसलिए वितरकों का प्रभाव फिल्म निर्माण में बढ़ जाता है और फिल्म अधिक मसालेदार होने के चक्कर में एक पायदान और नीचे उतर जाती है। कुछ लोग ये भी कहते हैं कि यदि भोजपुरी फिल्में बिहार में बनतीं तो लागत काफी कम होती और शायद वे बेहतर भी होतीं। मिथुन चक्रवर्ती की भोले शंकर की अपार सफलता और कुछ विवादों के बाद, भोजपुरी फिल्मों से जुड़े अनेक लोगों ने बिहार सरकार को साथ लेते हुए बिहार में भोजपुरी फिल्म उद्योग की स्थापना के बारे में बड़ी बड़ी बातें कीं , पर वे बाते बातों तक ही रह गयीं।

मिडिल क्लास दर्शक को आकर्षित करके और सरकार सहयोग करे तो अभी और 5 गुना विकास की सम्भावना देखने वाले मनोज तिवारी की बात का विस्तार करते हुए, बिहार झारखंड मोशन पिक्चर एसोसिएसन के रंजन सिन्हा मानते हैं कि पर यह तब तक संभव नहीं है जब तक भोजपुरी सिनेमा अपने सस्तेपन से बाहर निकलकर ग्राम्य जीवन की मौलिक कहानियों को प्रस्तुत नहीं करता। आलोचना के इन अनेक स्वरों के बीच प्रशंसा और प्रोत्साहन के भी कुछ स्वर मिलते हैं। जैसे रवि किशन यह नहीं मानते कि भोजपुरी फिल्में अश्लील हैं। उनके अनुसार दक्षिण की अनेक फिल्में अधिक अश्लील हैं। वे यह भी कहते हैं कि भोजपूरी संस्कृति इतनी समृद्ध है कि उसे इस अश्लीलता से कोई खतरा नहीं है। वरिष्ठ सिनेमा पत्रकार अजय ब्रह्मात्मज इस परिदृश्य को एक और नजर से देखते हैं। वे कहते हैं कि हम उन दर्शकों की बात क्यों नहीं करते जो ये फिल्में देख रहे हैं। जिन्होंने भोजपुरी फिल्मों को यह रवानी दी है। उसको जिन्दा रखा है। भोजपुरी सिनेमा की इस हरियाली से जाहिर है की यह भूमि कफी ऊर्वर है। तो जो जमीन ऊर्वर होगी, वहाँ मौसम और प्रकृति के अनुसार दूसरे पेड़ पौधे भी उग सकते हैं। हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा को देखें तो उनकी यह बात सही लगती है।

भोजपुरी सिनेमा का एक और भी पक्ष है। वह है मीडिया। मीडिया के लिए भी भोजपुरी सिनेमा एक बड़ा बाज़ार है। दोनों ने एक दूसरे का फायदा उठाया है। पर यह फायदा धन का है, विचार और संस्कार का नहीं। भोजपुरी फिल्मों के अश्लील पोस्टरों से भरे हिंदी अखबार इस बात की गवाही देते हैं। अब वक्त आ गया है कि भोजपुरी सिनेमा सफलता से सार्थकता की तरफ बढे और उसमें भी कोई कोर्ट, श्वास, अज्जी और नट सम्राट बने। अब जब भोजपुरी के सुपरस्टार राजनीति के भी सुपर स्टार हो गए हैं तो यह उम्मीद कई मायनों में बढ़ जाती है।